International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(4): 127-128

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(4): 127-128
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 23-05-2018
Accepted: 24-06-2018

अनिता चौधरी
गेस्ट फैकल्टी, संस्कृत विभाग
राजकीय कॉलेज धर्मशाला,
हिमाचल प्रदेश, भारत

Correspondence
अनिता चौधरी
गेस्ट फैकल्टी, संस्कृत विभाग
राजकीय कॉलेज धर्मशाला,
हिमाचल प्रदेश, भारत

निरोष्ठ्य रामचरित महाकाव्य में अंगीरस

अनिता चौधरी

प्रस्तावना

महाकाव्यों का संस्कृत साहित्य में अपना महत्वपूर्ण स्थान है। रामायण, महाभारत, पौराणिक कथाओं को लेकर आधार बनाकर महाकाव्यकारों ने अनेक महाकाव्य की रचना की है। उन्हीं महाकाव्य की श्रृंखला में रूचिकर विरचित निरोष्ठ्य रामचरित एक महत्वपूर्ण महाकाव्य है। जो वाल्मीकि रामायण पर आधारित है। निरोष्ठय रामचरित महाकाव्य में अंगीरस का वर्णन किया गया है। मनुष्य के जीवन में सदा एक ही रस नहीं बना रहता कभी हास– परिहास है तो कभी वेदन–विलाप, कभी उत्साह है तो कभी अपार शोकावेग देखने को मिलता है। महाकाव्य में प्रायः सभी रसों के रहने पर भी मुख्य रस एक ही होता है। जिसे अंगीरस कहते है। अंगीरस शब्द का अर्थ है मुख्य अंग या प्रधान। अन्त में करूण रस के ऊपर प्रकाश डाला गया है।

भारतीय काव्यशास्त्रियों ने महाकाव्य में विविध रसों की योजना पर विशेष बल दिया है। मनुष्य के जीवन में सदा एक ही रस या भाव नहीं बना रहता कभी हास–परिहास है तो कभी रोदन–विलाप, कभी उत्साह है तो कभी–कभी अपार शोकावेग, कभी क्रोध का प्रचण्ड–ताण्डव देखने को मिलता है। अतः महाकाव्य का अनेक रसों से ओत–प्रोत होना उचित तथा स्वाभाविक ही है। भामह के मतानुसार महाकाव्य में सभी रसों की स्थिति पृथक–पृथक अवश्य होनी चाहिए।[1] आचार्य दण्डी ने भी भामह के मत का समर्थन किया है[2] परन्तु महाकाव्य में प्रायः सभी रसों के रहने पा भी प्रधान अथवा मुख्य रस एक ही होता है जिसे अंगी रस कहते है। अंगी शब्द का अर्थ है मुख्य, अंग या प्रधान।[3] सामान्य रूप से हम कह सकते है कि जिस रस का महाकाव्य में सबसे अधिक प्रयोग हो वही अंगी रस है। इस अंगी रस की महाकाव्य में प्रधानता होती है। यदि महाकाव्य में सभी रसों को बराबर का स्थान दिया जाए, तो कथा के प्रवाह में उथल– पुथल सी मच जाएगी और पाठक को आनन्दानुभूति नहीं होगी। इस प्रकार काव्यशास्त्र में अंगरूप से आए सभी रस सर्वथा अंगी रस के ही सहायक होते हैं। उनमें से किसी भी रस को कवि अंगी रस से अधिक व्यापक बनाकर परिपोशन करे।[4]

करूण रस

करूण रस अन्य रसों की अपेक्षा अत्यन्त कमनीय रस है। इस में हमारी आखों से आंसुओं की झड़ी लग जाती है, जो हमारे हृदय की मलिनता को धो देते हैं। दुःख में हम निखर उठते है, हमें अपने कर्त्तव्याकर्त्तव्य का सम्यक् ज्ञान हो जाता है। यही रस सहृदयता का परिचय दिलाता है। यही परोपकार जैसे कठिन मार्ग का पथप्रदर्शक है। कहने का तात्पर्य है कि जगत् में अनेक गुणो का भण्डार यही रस है।

भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र में करूणरस को"

अथकरूणोनामशोकस्थायिभावप्रभवः" कहकर लक्षित किया है। इस प्रकार यह करूण रस शोक स्थायी भाव से व्युत्पन्न माना जाता है। इनके अनुसार अभीष्ट व्यक्ति के बधदर्शन अथवा अशुभसूचक वृत्तान्त या शब्दों को सुनने और अन्तस्थल को चोट पहुँचाने वाले ऐसे इन भावविशेषों से 'करण' रस व्युत्पन्न होता है। जोर–जोर से रोने, मूर्च्छा, प्रायश्चित, विलापादि करना, देह पटकने एवं पीटने आदि अनुभवों के द्वारा अभिनय करने योग्य करूणरस होता है। अभिप्राय है कि इन्हीं के द्वारा करूणरस का अभिनय करना चाहिए।[5]

निरोष्ठ्य रामचरित महाकाव्य में रूचिकर ने करूण रस का पूर्ण रूप से वर्णन किया है। इस महाकाव्य में करूण रस को मुख्य रस के रूप से स्वीकार किया गया है। महाकति रूचिकार ने करूण रस का वर्णन इस प्रकार से किया है–

द्वितीय सर्ग में राम के वन गमन के समय नगरवासी जन शीघ्र ही अपने नगर को छोड़कर आँखों से आँसू गिराते हुए उन्हीं के मार्ग से निकल पड़े।[6] प्रस्तुत श्लोक में राम आलम्बन विभाव हैं, उनका वनगमन उद्दीपन–विभाव, रूदन आदि अनुभाव तथा विशाद चिन्ता आदि व्यभिचारी भाव हैं।

पालित पुत्रों के समान आप लोग अपने प्रभु मेरे पिता की, जो संज्ञाहीन एवं कष्ट में पड़े हैं, यत्नपूर्वक सेवा करें।[7] यहाँ पर दशरथ आलम्बन–विभाव हैं। दाह आदि अवस्था उद्दीपन–विभाव है। संज्ञाहीन एवं कष्ट में पड़ना आदि अनुभाव है। मोह, चिन्ता आदि व्यभिचारी भाव है।

कवि ने राजा दशरथ और कौशल्या की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा है कि पुत्र को ने देखने के कारण राजा दशरथ उस समय मूर्च्छित हो गए थे। और माता कौशल्या अतिकष्ट के साथ संज्ञाहीन हो गयी थी।[8]

उपर्युक्त श्लोक में करूण रस अभिव्यक्त हुआ है। शोक इसका स्थायी भाव है। राम आलम्बन विभाव है। पुत्र का न देखना उद्दीपन विभाव है। राजा दशरथ का मूर्च्छित होना, माता कौशल्या का संज्ञाहीन होना आदि अनुभाव तथा चिन्ता, मोह, अपस्मार आदि संचारी भाव है। इस प्रकार विभावादि के संयोग से उदबुद्ध 'शोक' स्थायीभाव सामाजिकों को करूण रस की अनुभूति कराता हैं

राजा दशरथ के करूण क्रंदन का वर्णन करते हुए कवि कहते है कि वन जाते समय वे राम निकट ही थे, उस समय आँखे आँसुओं से भर गयीं, हाय! मैं उन्हें बिना देखे रह गया और वह पुरुष राम चन्द्र जी चले गए।[9] तृतीय सर्ग में करूण रस का वर्णन इस प्रकार किया गया है– लक्ष्मी के समान सती सीता क्यों अदृश्य हो गई। हाय! भाग्य नष्ट होने पर लोग कष्ट का घर बन जाता है।[10] पिता, राज्य, नगर, धन और सखियों को छोड़कर स्नेह से तुम हमारे साथ वन आयी थी और हम कठोर बन गये। इस तरह कष्टपूर्ण अनर्थ वाणी को कष्टपूर्वक कहते हुए दशरथ के बड़े पुत्र संज्ञाहीन हो गए।[11] यहाँ पर लक्ष्मी स्वरूप सीता आलम्बन विभाव है। उनका अदृश्य होना उद्दीपन हैं। राम का संज्ञाहीन होना अनुभाव तथा मोह, स्मृति, विशाद आदि व्यभिचारी भाव है। शोक इसका स्थायी भाव होने के कारण यह करूण रस का उदाहरण है।

इसी सर्ग में राम की एक अन्य उक्ति यह है– हे मित्र! एक ही चिताा पर मुझे अपने अनुज के साथ जला दो, जिससे कदाचित् जन्मान्तर में इसके साथ आलिंगन भ भी हो इसका दुःख न रहे। कष्टपूर्वक ऐसा कहते हुए वे राम मूर्च्छित हो गए। शक्ति से मारे हुए लक्ष्मण की रक्ष में जो थे, वे किसी तर होश में आए।

प्रस्तुत उदाहरण में लक्ष्मण आलम्बन विभाव है। शोक आदि अवस्था उद्दीपन विभाव है। मूर्च्छित होना अनुभाव तथा मोह, विशाद आदि व्यभिचारी भाव हैं। यहाँ पर सहृहय सामाजिक में शोकप्रकृति करूण रस अभिव्यक्त होता है।

निष्कर्ष

भारतीय काव्यशास्त्रियों ने महाकाव्य में विविध रसों की योजना पर विशेष बल दिया है। मनुष्य के जीवन में सदा एक ही रस नहीं बना रहता। महाकाव्य में सभी रसो की स्थिति अलग–अलग होनी चाहिए। निरोष्ठ्य महाकाव्य में अंगीरस तथा करूण रस मुख्य रूप से वर्णित है। जिस का महाकाव्यो में सर्वोपरि स्थान है।

सन्दर्भ ग्रन्थ –सूची

1. युक्तं लोकस्वभावैश्य रसैश्च सकलैः पृथक्। भामह् काव्यालंकार, 1.21.
2. अलंकृतमसंक्षिप्तं रसभावनिरन्तरम्। काव्यादर्श, 1.18.
3. संस्कृत हिन्दी कोश, पृ० 14.
   अंग विशिष्टः। शब्दकल्पद्रुम, पृ० 14.
   प्रधान, मुख्यः। वही,पृ० 15.
4. अविरोधी विरोधी वा रसोऽङ्गनि रसान्तरे।
5. परिपोशं न नेतव्यस्तथास्यादाविरोधिता। ध्वन्यालोक, 3.24
6. तातं कष्टश्रितं नाथं रक्षितास्तनया यथा।
   आराधयत कष्टेन नष्टसंज्ञं च यत्नतः।। वही,2.7.
7. तनयादर्शनाद् राजा तदासीद् गतचेष्टितः।
   तदीया जननी चासीद् गतसंज्ञातिकष्टतः।। निरोष्ठ्य रामचरित महाकाव्यम् 2.16.
8. यदासीत्तस्य सान्निध्यं काननं किल गच्छतः।
   नेत्रं तदास्त्रैराक्रान्तं हा नादृश्चगतेन सः।। वही, 2.17.
9. कथं चादृश्यता याता सती सीता श्रिया सदृक्।
   नष्टे दिष्टे हि कष्टानां सदनं जायते जनः।। निरोष्ठ्य रामचरित महाकाव्यम्, 3.57.
10. सन्त्यज्य जनकं राज्यं नगराणि श्रियः सखीः।
    श्रितास्यरण्यं नः स्नेहादहं निःस्नेहतां गतः।।
    इत्यनर्था गिरः कष्टाः संकीर्त्यानेक–कष्टतः।
    संज्ञाहीनश्च सत्रजातः स दाशरथिरग्रजः ।।वही, 3.59–60.
11. कनीयसा सहैकत्र चितायां नः सखे! दह।
    आश्लेशस्तेन न स्यान्नः कदाचिज्जननान्तरे।।
    निगदन्निति कष्टेन स आसीद् गतचेष्टितः।
    शक्त्या हतस्य रक्षार्थ ये ते संजातचेतनाः।। वही, 6.41–42